Q (1.) शिक्षण की प्रकृति क्या है? इनकी चर्चा करें।

Ans :- शिक्षण का अर्थ :- सामान्य शब्दों में शिक्षण का अर्थ सीखने में सहायता करने से किया जाता है। शिक्षण के द्वारा ही कोई व्यक्ति किसी कार्य को सीखने में सहायता अनुभव करता है। परन्तु शिक्षण का तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक उससे सीखने वाले सीख नहीं जाते, उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो जाता।

शिक्षण की परिभाषायें :-

क्लार्क के अनुसार :- "शिक्षण वे क्रियायें हैं जिसका निर्माण एवं कार्यान्वयन विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन के लिए किया जाता है।"

रायबर्न के अनुसार :- "शिक्षण ऐसा संबंध है जो बच्चे को अपनी सभी शक्तियों के विकास की ओर अग्रसर करता है।"

शिक्षण की प्रकृति :- शिक्षण प्रक्रिया की व्याख्या से शिक्षण की प्रकृति के विषय में निम्न तथ्य उजागर होते हैं :-

1.) शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है :- क्योंकि शिक्षण समाज के लिए, समाज में रहकर तथा समाज द्वारा होता है, अतः यह एक सामाजिक क्रिया है।

2.) शिक्षण एक विकास की प्रक्रिया है :- शिक्षण द्वारा व्यक्ति में अधिगम उत्पन्न किया जाता है जिससे उसमें विकास का दौर प्रारंभ होता है। यह अधिगम व्यक्ति के प्रत्येक विकास अवस्था में होता है। अतः शिक्षण एक विकास की प्रक्रिया है।

3.) शिक्षण व्यवहार को स्वरूप प्रदान करता है - शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों की आदतों एवं व्यवहार को स्वरूप मिलता है, किसी दिशा का बोध होता है। शिक्षण से छात्र के व्यवहार को नियंत्रित करके इच्छित दिशा की ओर मोड़ा जा सकता है।

4.) शिक्षण कला एवं विज्ञान है :- शिक्षण को पहले कला माना जाता था क्योंकि पहले यह मत था कि शिक्षण - योग्यतायें जन्मजात होती हैं लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में इसे विज्ञान भी मानते हैं क्योंकि विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों द्वारा अच्छे शिक्षकों को पैदा किया जा सकता है।

5.) शिक्षण एक निर्देशन की प्रक्रिया है - निर्देशन का मुख्य लक्ष्य होता है - छात्रों को उनकी योग्यतानुसार विकसित करना। यह उद्देश्य शिक्षण की प्रक्रिया का भी है।

6.) अधिगम स्थितियों का विकास - शिक्षण द्वारा अधिगम - स्थितियों का विकास किया जाता है।

(7) शिक्षण भाषायी प्रक्रिया है - शिक्षण प्रक्रिया में शैक्षिक सामग्री को छात्रों तक पहुँचाने के लिए भाषा का प्रयोग किया जाता है, अतः यह एक भाषायी प्रक्रिया है।

(8) शिक्षण एक उपचार विधि है - शिक्षण के माध्यम से छात्रों की त्रुटियों एवं कमजोरियों को इंगित करके उनका उपचार किया जा सकता है ताकि उसमें सुधार किया जा सके।

शिक्षण के महत्व :-

(1) सूचना देना - एक अच्छे अध्यापक का कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों को पृष्ठभूमि, संवृद्धि, एवं अभिप्रेरणा के लिए आवश्यक सूचनायें प्रदान करे। अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को कक्षा में प्राप्त ज्ञान एवं कौशलों का अभ्यास करने की अनुमति दे।

(2) अधिगम समस्याओं का निदान करना - कक्षा में कई विद्यार्थी होते हैं जो पढ़ाई में अच्छी उन्नति नहीं करते। शिक्षण को ऐसे प्रत्येक विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान करके उसके समाधान के लिए संभावित उपायों का सुझाव देने का प्रयास करना चाहिए।

(3) समूह को संगठित करना :- पाठ के आरंभ में अध्यापक कई विद्यार्थियों का सामना करता है। ये विद्यार्थी समूह के रूप में उसके सामने नहीं होते। इस समय अध्यापक का महत्वपूर्ण कार्य होता है- विद्यार्थियों को एक संगठित समूह में गठित करना, एक ऐसा समूह जिसके सामान्य प्रयोजन एवं सामान्य क्रियायें हो।

(4) मूल्यांकन करना, रिकॉर्ड करना और रिपोर्ट लिखना :- अध्यापक को परीक्षाओं तथा सामाजिक परीक्षणों द्वारा समूची कक्षा तथा प्रत्येक विद्यार्थी की उन्नति का मूल्यांकन करना होता है। उसे मुख्याध्यापक और उसके माता-पिता को इस उन्नति की भी जानकारी देनी होती है और उसका रिकॉर्ड भी रखना होता है।

(5) कक्षा का प्रबंध एवं गठन करना - अध्यापक का महत्वपूर्ण कर्तव्य है - कक्षा को अधिगम का सुंदर स्थान बनाना। वहाँ उचित वातावरण तैयार करना चाहिए। कक्षा भवन में शारीरिक क्रियाओं के लिए उचित व्यवस्था होनी चाहिए। कक्षा का प्रबंध लचीला होना चाहिए ताकि उसमें विभिन्न अवसरों के अनुकूल परिवर्तन किया जा सके।

Q (2.) शिक्षण के विभिन्न स्तर कौन-कौन से है ?

Ans :- शिक्षण स्तर का अर्थ :- व्यक्ति अधिगम प्रक्रिया के दौरान बहुत कुछ सीखता है कुछ प्रत्यक्ष रूप से कुछ अप्रत्यक्ष रूप से। इन सीखे गए अनुभवों में से कुछ तो लंबे समय तक मस्तिष्क में रहते हैं तो कुछ बार-बार याद आते हैं तो कभी भूल जाते हैं। यह शिक्षण स्तर के कारण होता है। शिक्षण के मस्तिष्क पर प्रभाव के आधार पर इसे तीन भागों में बाँटा गया है।

शिक्षण स्तर के प्रकार :-

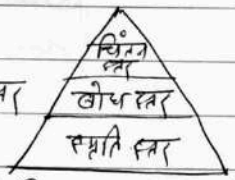

शिक्षाविदों तथा मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण के उपर्युक्त तीन स्तर निर्धारित किए है। मनोवैज्ञानिकों ने इन स्तरों को बौद्धिक शक्तियों के उपयोग की दृष्टि से विचारहीन, विचारयुक्त तथा अति विचारयुक्त माना है।

(1) स्मृति स्तर का शिक्षण :-

जहाँ तक मानसिक शक्तियों और बौद्धिक क्षमताओं के उपयोग तथा विकास का प्रश्न है, स्मृति स्तर का शिक्षण काफी निम्न स्तर का माना गया है। इसमें शिक्षण, अधिगम स्मृति के सहारे टिका रहता है छात्र केवल रटकर अपनी स्मृति में बनाये रखता है तथा कुछ-कुछ का प्रयोग नहीं करता। स्मृति स्तर का शिक्षण बहुत अधिक अध्यापक नियंत्रित होता है तथा छात्र मौन रहकर सुनता रहता है। छात्र में सीखने के प्रति कोई स्वाभाविक इच्छा या अभिप्रेरणा नहीं होती है।

वुडवर्थ के अनुसार - " सीखे हुए अनुभवों के सीधे उपयोग को स्मृतिस्तर है।

(2.) बोध स्तर का शिक्षण :-

बोध स्तर का शिक्षण स्मृति स्तर के शिक्षण की अपेक्षा अधिक विचारयुक्त तथा उच्च माना जाता है इसमें स्मृति स्तर की अपेक्षा अधिक मानसिक शक्तियों तथा बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग होता है। मॉरिसन एल बिग्गी के अनुसार - " बोध स्तर का शिक्षण विद्यार्थियों को सामान्यीकरण तथा विशिष्ट या दूसरे शब्दों में सिद्धान्त तथा अलग-अलग तथ्यों के बीच पाए जाने वाले संबंधों से परिचित कराने का प्रयत्न करता है और यह भी बताता है कि सिद्धांत का किस तरह व्यवहारिक उपयोग किया जा सकता है।"

अतः बोध-स्तर का शिक्षण स्मृति स्तर के शिक्षण की तरह तथ्यों और सूचनाओं के आधार पर उचित निष्कर्ष निकालने, सामान्यीकृत नियम तथा सिद्धांतों को ग्रहण करने में भी आगे आता है।

उद्देश्य :- बोध स्तर के शिक्षण द्वारा निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति की अपेक्षा की जाती

(a) ज्ञानात्मक उद्देश्य – विषय से संबंधित तथ्यों एवं सूचनाओं के बारे में ज्ञान अर्जित करना।
(b) बोधात्मक उद्देश्य – अर्जित तथ्यों के मध्य संबंध देखना। अर्जित तथ्यों के बीच समानता तथा असमानता की पहचान करना। विषय वस्तु का अर्थ जानना। विचार तथा नियम स्थापित करना।

बोध स्तर शिक्षण की विशेषताएँ :—

① बोध स्तर के शिक्षण में मात्र तथ्यों को रटकर स्मृति में संजोए नहीं रखते बल्कि ठीक प्रकार से सूझ-बूझ का ग्रहण करते हैं। अतः बोध स्तर के शिक्षण द्वारा प्राप्त ज्ञान अधिक प्रभावपूर्ण एवं स्थायी होता है।

② इसमें बच्चों को जो पढ़ाया जाता है, उसे पूर्व अनुभवों व ज्ञान से जोड़कर बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं, जिससे अधिगम, स्मृति स्तर की अपेक्षा अच्छा होता है।

③ इस स्तर पर मौखिक, लिखित तथा क्रियात्मक सभी प्रकार की परीक्षायें ली जाती हैं।

3. चिंतन स्तर :—

चिंतन स्तर अन्य स्तरों की अपेक्षा उच्च स्तर माना जाता है। यह शिक्षण के उच्चतर स्तर का प्रतिनिधित्व करता है। विद्यार्थियों की बौद्धिकता को अपने शिखर तक पहुँचाने का कार्य इसी स्तर के शिक्षण द्वारा किया जाता है। इसमें अध्यापक की भूमिका जनतंत्रात्मक होती है। इसमें अध्यापक का कार्य बच्चों पर अपनी समझ लादना नहीं अपितु ज्ञान तथा सूझ-बूझ को स्वयं अर्जित करने की क्षमता उत्पन्न करना है। यह स्तर विद्यार्थी स्तर है।

चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति किसी नई परिस्थिति का सामना करने अथवा किसी समस्या का समाधान करने में अपने पूर्व अनुभवों का प्रयोग करता है और इसका अंत समस्या के समाधान से होता है। चिंतन के द्वारा व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान करता है।

अतः हम कह सकते हैं कि बोध स्तर स्मृति स्तर की अपेक्षा उच्च है। यह मात्र तथ्यों के रटने पर बल नहीं देता बल्कि इसे भली-भाँति समझकर ग्रहण करते हैं। यह सुव्यवस्थित स्तर का शिक्षण है। बोध स्तर का शिक्षण अन्य स्तरों के शिक्षण की तुलना में अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है।

Q(3.) शिक्षण के सिद्धांत से क्या अभिप्राय है? इनकी व्याख्या करें।

Ans:- शिक्षण सिद्धांत :-

भट्टाचार्य (1973) ने शिक्षण सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लिखा है कि -" शिक्षण की प्रक्रिया दिन-प्रतिदिन जटिल होती जा रही है, अतः उसकी व्याख्या के लिए विभिन्न प्रकार से प्रयत्न किये जा रहे है। शिक्षण एक कला है और विज्ञान एक विज्ञान है। यह दोनों धारणायें शिक्षक - शिक्षण समाज में प्रचलित है। अतः शिक्षण सिद्धांतों में कला और विज्ञान दोनो धारणाओं को देखते हुए शिक्षाविदों व वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों ने ध्यान रखते हुए शिक्षण के नियमों का उल्लेख किया है।

गेज (1963) ने लिखा है कि शिक्षण सिद्धांत तीन बातों का उत्तर देते है-

(1) शिक्षक किस प्रकार व्यवहार करते है।
(2) वे वैसा व्यवहार क्यों करते है तथा
(3) उस व्यवहार का प्रभाव क्या होता है।

अतः कहा जा सकता है कि शिक्षण सिद्धांत हमें यह बताता है कि शिक्षण क्या है, शिक्षण - व्यवहार किसे कहते है, शिक्षण में कौन - कौन से चर तथा उपकल्पनायें होती है, शिक्षक का व्यवहार कैसा और क्यों होता है तथा उस व्यवहार का छात्रों तथा शिक्षण प्रक्रिया पर क्या प्रभाव पड़ता है एवं किस प्रकार से शिक्षण के वांछित लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्रभावात्मक रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

शिक्षण सिद्धांत के आधार :—

(1) शिक्षण एक स्वतंत्र अनुशासनात्मक प्रक्रिया है।
(2) शिक्षण एक कला है।
(3) शिक्षण एक विज्ञान भी है।
(4) शिक्षण के सिद्धांत अधिगम के सिद्धांतों पर आधारित किये जा सकते है।
(5) शिक्षण के लिए अधिगम की परिस्थितियाँ एक सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।
(6) शिक्षण प्रतिमान, शिक्षण सिद्धांतों के मूलभूत आधार है।

शिक्षण सिद्धांतों की आवश्यकता :—

(1) शिक्षण सिद्धांत एक प्रभावशाली अध्यापक का निर्माण करते है।
(2) शिक्षण सिद्धांत सम्पूर्ण शिक्षण - प्रक्रिया को सुदृढ़ तथा उन्नत बनाते है।
(3) शिक्षक के ज्ञान, पूर्व कथन तथा नियंत्रण में वे वृद्धि करते है।
(4) अधिगम के लिए समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए शिक्षण सिद्धांत अति आवश्यक है।

(5) ये शिक्षण नीतियों के विषय में स्पष्ट निर्देशन प्रदान करते हैं।
(6) शिक्षण के विभिन्न चरों तथा आचरों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने की प्रक्रिया सरल बनाते हैं।
(7) ये विभिन्न अनुदेशन प्रारूपों के बारे में ज्ञान देते हैं और उनका प्रयोग करते हैं।
(8) ये शिक्षण के क्षेत्र में शोध एवं प्रयोग के लिए नये आयाम प्रस्तुत करते हैं।
(9) ये विभिन्न प्रकार के शिक्षकों की विभिन्न अवधारणाओं के विषय में ज्ञान प्रदान करते हैं।
(10) ये शिक्षण के नियम, नियोजन, व्यवस्था तथा मूल्यांकन आदि के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं।
(11) शिक्षण सिद्धांत के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि शिक्षण के कितने स्तर हैं और उनकी व्यवस्था किन प्रतिमानों पर आधारित है तथा शिक्षण के कौन-कौन से विभिन्न स्वरूप हैं।
(12) शिक्षण सिद्धांत, शिक्षण तथा अधिगम के मध्य पर-संबंध की व्याख्या करते हैं तथा इन दोनों चरकों के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान करते हैं।
(13) शिक्षण सिद्धांत बताते हैं कि शिक्षण प्रक्रिया में कौन-कौन से आश्रित तथा कौन-कौन से स्वतंत्र चर हैं।
(14) शिक्षण-सिद्धांत वर्तमान ज्ञान को संगठित करते हैं।
(15) शिक्षण-सिद्धांत अनुभवों, परम्पराओं आदि को अपने में निहित रखते हैं।
(16) शिक्षण सिद्धांत के माध्यम से शिक्षण को एक स्वतंत्र क्रियात्मक अपरिहार्य विषय बनाने के लिए प्रयत्न किये जा सकते हैं।

अतः यह आवश्यक है कि शोध सिद्धांत के गठन तथा उनके परीक्षण क्षेत्र में ज्यादा से ज्यादा काम किया जाये, तभी शिक्षण एक विज्ञान के रूप में अपना स्थान प्राप्त कर सकेगा।

शिक्षण सिद्धांत के क्षेत्र में शोध करने के लिए अभी काफी आवश्यकता है। इसके अनेक प्रकरण अभी छुए नहीं गये हैं और इसलिए फलतः कोई भी शिक्षण सिद्धांत स्वयं में सिद्धांत की कसौटी पर पूर्णरूप से खरा नहीं उतर सका है। आवश्यकता है कि भारतीय परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के शोध एवं प्रयोग किये जायें तभी कोई शिक्षण वास्तविक रूप में शिक्षण सिद्धांत कहा जा सकेगा।

Q(4.) ब्रूनर के संप्रत्यय - उपलब्धि प्रतिमान की व्याख्या कीजिए।

Ans:- ब्रूनर का संप्रत्यय का सिद्धांत :- ब्रूनर के अनुसार संप्रत्यय के पाँच तत्व होते हैं :-

(a) नाम (b) उदाहरण (c) आवश्यक तथा अनावश्यक गुण
(d) गुणात्मक मूल्य (e) नियम

ब्रूनर के अनुसार इन पाँच तत्वों को जान लेना ही 'संप्रत्यय को सीखना' कहते हैं।

(1) नाम - शब्द किसी वर्ग को दिया जाता है।

(2) उदाहरण - इस शब्द का संबंध संप्रत्यय की घटनाओं से होता है इस तत्व के अंतर्गत कुछ उदाहरण सकारात्मक होते हैं तथा कुछ नकारात्मक होते हैं।

(3.) गुण :- गुण से अभिप्राय उन सामान्य विशेषताओं से है जो कुछ उदाहरणों को एक ही वर्ग में रखने के लिए बाध्य करती हैं। लेकिन सभी विशेषतायें किसी संप्रत्यय के लिए आवश्यक नहीं होती। इसके कुछ आवश्यक गुण भी होते हैं।

(4.) गुणात्मक मूल्य - कई बार एक ही वस्तु के एक ही गुण में कई विशेषतायें देखने को मिलती हैं।

(5) नियम :- नियम संप्रत्यय के आवश्यक गुणों के विशिष्टीकरण का कथन या परिभाषा होता है।

हम विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा अपने आस-पास से सूचनायें एकत्रित करते हैं। इसके मस्तिष्क में एकत्रित रूप को ही हम 'ज्ञान' का नाम देते हैं। जब हम इसी ज्ञान को शिक्षण के संदर्भ में प्रयुक्त करते हैंतो इसे "विषय-वस्तु" का नाम दिया जाता है। यही विषय वस्तु निम्नलिखित तीन प्राथमिक स्वरूपों में पाई जाती है।

(1) तथ्य (2) प्रत्यय (c) सामान्यीकरण

तथ्य :- तथ्यों को अवलोकन की प्रक्रिया द्वारा अर्जित किया जाता है।

प्रत्यय :- हम वर्गीकरण की प्रक्रिया द्वारा प्रत्यय ग्रहण करते या सीखते हैं।

सामान्यीकरण :- सामान्यीकरण परिणामक कथन होता है।

संप्रत्यय - उपलब्धि प्रतिमान के तत्व :-

(1) लक्ष्य (Focus) - इस प्रतिमान का मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य किसी संप्रत्यय को सीखना या उपलब्ध कराना है। ब्रूनर के अनुसार वर्गीकरण क्रिया के दो पक्ष होते हैं :-

(a) संप्रत्यय - रचना का कार्य - (Act of Concept Formation)
(b) संप्रत्यय - उपलब्धि कार्य - (Act of Concept Attainment)
रचना का कार्य संप्रत्यय-उपलब्धि का पहला चरण होता है।
(2) संरचना - संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान में ब्रूनर तथा उसके सहयोगियों के अध्ययन के आधार तीन विभिन्नतायें हैं। इन्हें प्रतिमान (Model) भी कहा जा सकता है।
(a) आग्रहण-केन्द्रित प्रतिमान (Reception-Oriented Model)
(b) चयन केन्द्रित प्रतिमान (Selection-Oriented Model)
(c) असंगठित सामग्री प्रतिमान (Unorganised Materials Model)
(3) सामाजिक प्रणाली (Social System) :- संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान में शिक्षक - शिक्षण कार्य प्रारंभ करने से पहले उदाहरणों की रचना करता है, विचारों और सामग्री को पाठ्य पुस्तकों तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त करते हैं। वे इनका इस प्रकार से डिजाइन तैयार करते हैं कि संप्रत्यय के सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरण हों तथा गुणों में स्पष्टता हो। आग्रहण - केन्द्रित प्रतिमान के प्रयोग में शिक्षक एक रिकॉर्डर की भूमिका अदा करता है। शिक्षक का एक और कार्य यह भी है कि वह विद्यार्थियों को संकेत प्रस्तुत करना।
(4) मूल्यांकन का सहायक प्रणाली (Support System):- इस सामग्री में उन सकारात्मक और नकारात्मक उदाहरणों का समावेश हो सकता है जिनका संकेत विद्यार्थियों को किया जा सके। विद्यार्थियों को यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि उन्हें नए संप्रत्ययों की खोज नहीं करनी, बल्कि पहले संप्रत्ययों, जिनका चयन शिक्षक ने पहले से कर लिया होता है, की उपलब्धि करनी होती है। जब विद्यार्थियों के समक्ष आँकड़े (उदाहरण) प्रस्तुत किये जाते हैं और विद्यार्थी उनके गुणों का वर्णन करते हैं, तो उन गुणों को शिक्षक श्यामपट्ट पर रिकॉर्ड कर सकता है या लिख सकता है। इस प्रकार शिक्षक सहायक प्रणाली द्वारा विद्यार्थी की सहायता करता है।

संप्रत्यय प्रतिमान की उपयोगिता का प्रयोग :- संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान का प्रयोग सभी आयु स्तरों पर किया जा सकता है।

Q(5.) ग्लेसर का बुनियादी शिक्षण प्रतिमान क्या है?

Ans:- एक अध्यापक शिक्षण करते समय अलग-अलग तरह की विधियों व तकनीकों का प्रयोग करता है। इससे शिक्षण अधिक प्रभावपूर्ण होता है। इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए शिक्षण में शिक्षण प्रतिमानों का प्रयोग किया जा रहा है। ताकि बच्चे विषयवस्तु को अधिक सरलता, सहजता से समझ सके तथा अध्यापक अपने उद्देश्य की सफलतापूर्वक प्राप्ति कर सके।

प्रतिमान का अर्थ :- प्रतिमान शब्द आँग्ल-भाषा के Model शब्द का हिन्दी है। मॉडल शब्द को हम दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में कई तरह से प्रयोग करते है। जैसे ताजमहल का मॉडल, जो दिखने में बिल्कुल वास्तविक जैसा ही होता है। परन्तु यह ~~वास्तविक~~ वास्तविक वस्तु का लघु रूप होता है, जो वास्तविक से मिलता-जुलता है।

मॉडल या प्रतिमान शब्द का प्रयोग किसी आदर्श व्यक्ति के लिए भी किया जाता है। कोई भी व्यक्ति इस आदर्श का अनुकरण कर व्यवहार और चरित्र संबंधी अच्छी या बुरी आदतों को ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। इस रूप में कोई भी अध्यापक, नेता या अभिनेता बच्चों के लिए मॉडल या प्रतिमान सिद्ध हो सकते है।

शिक्षण प्रतिमान का अर्थ :- शिक्षण तथा अधिगम प्रक्रिया को अधिक सरल, स्पष्ट तथा मूर्त रूप प्रदान करने के लिए शिक्षक जिन प्रतिमानों का प्रयोग करता है, उन्हें शिक्षण प्रतिमान कहते है।

जॉयस्री एवं वील के अनुसार :- "शिक्षण प्रतिमान वह नमूना अथवा योजना है जिसे किसी पाठ्यक्रम अथवा कोर्स का निर्माण करने, अनुदेशनात्मक सामग्री का चयन करने और किसी अध्यापक की क्रियाओं के मार्गदर्शन हेतु काम में लाया जा सकता है।"

हीमन के अनुसार :- "शिक्षण-प्रतिमान शिक्षण के संबंध में सोचने विचारने की एक रीति है।"

अगर इन परिभाषाओं को ध्यान में रखा जाए तो प्रतिमान पद निम्न रूप से परिभाषित किया जा सकता है :- शिक्षक प्रतिमान से अभिप्राय एक ब्लूप्रिंट अथवा कार्ययोजना से है जिसके द्वारा एक शिक्षक को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्देशन और मार्गदर्शन प्राप्त होता रहता है।

बुनियादी शिक्षण - प्रतिमान का विकास 1962 में राबर्ट ग्लेसर ने किया था। राबर्ट ग्लेसर ने इसमें मनोविज्ञान के सिद्धांत को प्रयोग किया इसीलिए इसे बुनियादी प्रतिमान कहते हैं। यह प्रतिमान अधिक कठिन शिक्षण - प्रतिमानों को समझने में सहायक होता है।

* ग्लेसर के बुनियादी शिक्षण - प्रतिमान के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं :—

(1) केन्द्र बिन्दु / उद्देश्य :— इसमें ग्लेसर ने उन्हीं उद्देश्यों की बात कही जो कक्षा में एक शिक्षक के उद्देश्य होते हैं। शिक्षक के उद्देश्य परम्परागत रूप से ज्ञान या बोध के रूप में, आवृत्तियों और कौशलों आदि के रूप में अभिव्यक्त किए जाते हैं। शिक्षक के उद्देश्य स्कूल-उद्देश्यों के उपवर्ग के रूप में भी जाने जाते हैं।

(2) संरचना - इस तत्व में चार भाग हैं।

(a) अनुदेशनात्मक उद्देश्य - अनुदेशनात्मक उद्देश्यों से अभिप्राय उन उद्देश्यों से है जिन्हें किसी अनुदेशन की समाप्ति पर प्राप्त करते हैं।

(b) प्रारंभिक व्यवहार - किसी विशेष व्यवहार को ग्रहण करने से पहले विद्यार्थी जो पूर्व ज्ञान ग्रहण कर चुके होते हैं, वे व्यवहार प्रारंभिक व्यवहार कहलाते हैं।

(c) निर्देशन प्रक्रिया - जो सामग्री पढ़ानी है उसके अनुसार शिक्षण विधियाँ चुनना और शिक्षण सामग्री चुनना।

(d) निष्पादन मूल्यांकन - निष्पादन मूल्यांकन अनुदेशन के दौरान और अंत में विद्यार्थी की सहायक निष्पत्ति और अंतस्थ निष्पत्ति को मापने की एक प्रक्रिया है।

(3) प्रतिक्रिया का सिद्धांत - इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षक व छात्र में अन्तः क्रिया अच्छी होनी चाहिए। एक सन्तुलन उपागम होना चाहिए।

(4) सामाजिक प्रणाली - इस प्रणाली के अनुसार शिक्षक व छात्र का संबंध लोकतांत्रिक समाज की तरह होना चाहिए।

(5) सहायक प्रणाली - शिक्षक व छात्र दोनों ही शिक्षण को प्रभावी बनाते हैं इन दोनों के अलावा शिक्षण को प्रभावी बनाने वाली कोई भी चीज सहायक प्रणाली होती है।

अतः ग्लेसर का बुनियादी शिक्षण प्रतिमान शिक्षण प्रक्रिया के सम्प्रत्ययीकरण में सहायक होता है। अधिगम व्यवस्था को उन्नत बनाने में यह प्रतिमान सहायता प्रदान करता है इस प्रतिमान को आसानी से अपनाया जा सकता है

Q(6.) प्रदर्शन विधि से आप क्या समझते हैं? इसके गुण व दोषों की विवेचना करें।

Ans:- प्रदर्शन विधि :- इस विधि द्वारा विषय वस्तु को पढ़ाते समय दृश्यरूप में प्रस्तुत करके पढ़ाना 'प्रदर्शन' कहलाता है। इस विधि में मूर्त से अमूर्त शिक्षण प्रयुक्त होता है। अधिगम की प्रक्रिया में अमूर्त विषय-वस्तु का प्रयोग नहीं किया जाता है, क्योंकि छात्रों के मस्तिष्क में स्थायी नहीं रह पाता है। जबकि मूर्त के द्वारा उनका ज्ञान स्थायी रहता है। मूर्त ज्ञान प्रदर्शन विधि का पूर्ण रूप माना जाता है। 'प्रदर्शन' अर्थात 'साक्षात प्रयत्न'।

इस विधि में शिक्षक शिक्षण विधि का प्रयोग प्रदर्शित करते हैं साथ ही साथ उससे संबंधित महत्वपूर्ण अंकों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। प्रयोग-प्रदर्शन के समय छात्र सक्रिय रहते हैं, इस प्रकार का शिक्षण एक मार्गी न रहकर बहुमार्गी हो जाता है, जिससे शिक्षक तथा छात्रों का शिक्षण प्रयोग के समय रुचि बनी रहती है। इसके माध्यम से छात्रों में तार्किक विकास पर्याप्त होता है।

प्रदर्शन विधि के गुण :-

(1) इस विधि से बालकों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है, यह विज्ञान शिक्षण के लिए अत्यंत उपयोगी है।

(2) यह विधि छात्रों में सूक्ष्म प्रेरणा का अभ्यास प्रदान करती है।

(3) यह छोटे बालकों में रुचि उत्पन्न करता है तथा सक्रिय रखने में यह अत्यंत उपयोगी विधि है।

(4) इसे मनोवैज्ञानिक विधि भी कह सकते हैं, क्योंकि छात्र स्मृति और कल्पना पर निर्भर रहने के कारण वस्तु को मूर्त रूप में देखते हैं।

प्रदर्शन विधि के दोष :-

(1) छात्र स्वयं उपकरणों तथा यंत्रों का प्रयोग नहीं करते इसलिए उसे वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

(2) अधिकांशतः छात्र सक्रिय रहते हैं, जबकि कुछ छात्र सक्रिय नहीं रहते हैं।

(3) इस विधि में निरीक्षण पर अत्यधिक बल दिया जाता है, जबकि मन्द बुद्धि छात्र मात्र निरीक्षण द्वारा निष्कर्ष नहीं निकाल पाते।

(4) इस विधि में 'कार्य करके सीखना' के सिद्धांत के लिए कोई महत्व नहीं है।

(5) इस विधि में विषय-वस्तु समय से समाप्त नहीं की जा सकती।

Q(8.) व्याख्यान प्रदर्शन विधि पर नोट लीखिए ।

Ans:- व्याख्यान प्रदर्शन विधि :- व्याख्यान - प्रदर्शन विधि एक प्रभावपूर्ण विधि है, क्योंकि इसमें व्याख्या के साथ उसका प्रदर्शन किया जाता है। विद्यार्थी की उपस्थिति में शिक्षक कक्षा के सामने प्रदर्शन करता है और इसी के संबंध में प्रश्न पूछता है।

इसमें विद्यार्थी सभी मॉडल को सावधानीपूर्वक देखते हैं, क्योंकि इन्हें प्रत्येक मॉडल की पूरी व्याख्या करनी पड़ती है व्याख्या के साथ वह उसका निष्कर्ष भी प्रस्तुत करते हैं विद्यार्थी सक्रिय रूप में भाग लेते हैं। विज्ञान शिक्षण में इस विधि के बिना प्रयोगात्मक कार्य करना असंभव है। विद्यार्थी को विज्ञान विषय में रुचि उत्पन्न करने के लिए उनके सामने कई प्रदर्शन करके दिखाये जाये ताकि विद्यार्थी को उसके बारे में बताई जाने वाली बातें कहाँ तक सच है, उसका पता वह खुद ही लगा सके, साथ ही साथ वह इसे जीवन पर्यन्त स्मरण रख सके। इसलिए विज्ञान-शिक्षण में इस विधि को एक आवश्यक अंग के रूप में माना गया। विज्ञान शिक्षक ने बच्चों की रुचि और मानसिक जागरूकता को देखते हुए यह निर्णय लिया कि यदि विद्यार्थी को, प्रयोगशाला में प्रयोग करे तो वह इसे प्रभावपूर्ण ढंग से सीख सकेंगे क्योंकि सिर्फ व्याख्यान विधि के माध्यम से उन्हें यह नहीं सिखाया जा सकता।

इस प्रयोग में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही सक्रिय रूप से रुचि पूर्वक प्रयोग - प्रदर्शन तथा व्याख्या करते है। इससे वह समस्या को सरलतापूर्वक समझ लेते है।

व्याख्यान प्रदर्शन विधि की प्रकृति :-

(1) यह विधि विज्ञान - शिक्षक के लिए अत्यंत उपयोगी है।
(2) मॉडल प्रदर्शन के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए।
(3) इस विधि द्वारा छात्रों को व्यवहारिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।
(4) इसमें छात्र विशेष रुचि लेते है।
(5) मॉडल प्रदर्शन सरल गति से होना चाहिए।
(6) व्याख्यान -प्रदर्शन के समय शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों का ही सहयोग आवश्यक है।
(7) इसमें प्रदर्शन की जाने वाली मॉडलों का प्रयोग विद्यार्थी द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

व्याख्यान प्रदर्शन विधि के गुण :-
(1) इसमें समय की बचत होती है तथा कम खर्चीली विधि है।
(2) यह मनोवैज्ञानिक विधि पर आधारित है।
(3) विद्यार्थी की मानसिक शक्ति का विकास होता है।
(4) इस विधि में अनुदेशन मौखिक रूप में तथा ठोस होता है।

व्याख्यान प्रदर्शन विधि के दोष :-
(1) इसमें विद्यार्थी स्वयं प्रयोग प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं।
(2) इस विधि में विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता के रूप में रहता है।
(3) इसमें करके सीखने पर बल नहीं दिया जाता है।
(4) इस विधि द्वारा विद्यार्थी में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित नहीं हो पाता है।

Q (8.) आगमन व निगमन विधियों से आप क्या समझते हैं? व्याख्या करें।

Ans:- आगमन व निगमन विधि :- आगमन तथा निगमण शिक्षण की दो अलग-अलग विधि होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं। सामान्यतः शिक्षण में दोनों विधियों को समन्वित रूप में प्रयोग किया जाता है।
आगमन विधि (Inductive Method) :- इस विधि द्वारा शिक्षण करते समय शिक्षक छात्रों के समक्ष कुछ विशेष परिस्थितियाँ और उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन उदाहरणों के द्वारा छात्र तार्किक ढंग से सोचते हुए कुछ विशेष सिद्धांत नियम अथवा सूत्र की रचना करते हैं। इसके लिए छात्र अपने अनुभवों, मानसिक शक्तियों तथा पूर्व ज्ञान का प्रयोग करते हैं। यह एक सामान्य अनुमान है कि कोई छात्र कुछ विशेष परिस्थितियों अथवा उदाहरणों को देखकर यह अनुभव करके उनमें पाई जाने वाली एकरूपता को निष्कर्ष के रूप में अपना लेते हैं। उदाहरण के लिए जलने वाली विभिन्न वस्तुओं के पास गर्मी का अनुभव करके छात्र यह धारणा बना लेता है कि जलने वाली वस्तुएँ गर्मी उत्पन्न करती हैं। इसलिए इस विधि को आगमन या सामान्यानुमान विधि कहते हैं।

दैनिक जीवन में आगमण विधि के ज्ञान :- एक बच्चा हरे रंग का सेब खाता है उसे वह खट्टा लगता है। इसी दिन वह फिर हरे रंग का सेब चखता है। वह भी खट्टा लगता है। फिर भी वह हरे रंग का सेब खाता है। वह

भी खट्टा लगता है। इन सभी उदाहरणों के द्वारा वह इस परिणाम पर पहुँचता है कि इस रंग के सेब खट्टे होते हैं। फिर कभी जब वह हरे रंग का सेब देखता है तो बिना खाये ही कह देता है कि यह हरे रंग का सेब खट्टा है। ज्ञान प्राप्त करने के इस ढंग को आगमन विधि कहते हैं।

आगमन विधि के गुण :-

(1) यह एक वैज्ञानिक विधि है, क्योंकि इस विधि द्वारा अर्जित ज्ञान प्रत्यक्ष तथ्यों पर आधारित है।

(2) इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है क्योंकि इस विधि के द्वारा बालक को नियम, सूत्रों का निर्धारण एवं सामान्यीकरण की प्रक्रिया का ज्ञान हो जाता है।

(3) इस विधि द्वारा बालकों को स्वयं कार्य करने की प्रेरणा मिलती है, जिससे उनमें आत्म निरीक्षण तथा आत्म विश्वास की वृद्धि होती है।

(4) इस विधि में रटने को प्रोत्साहन नहीं मिलता।

(5) यह विधि छोटी कक्षाओं के बच्चों में गणित के प्रति जिज्ञासा और रुचि उत्पन्न करती है।

निगमन विधि :- यह विधि आगमन विधि के विपरीत तथा पूरक विधि है। इस विधि में छात्रों को पहले ही पूर्व अनुभवों, प्रयोगों एवं उदाहरणों द्वारा बने हुए नियम तथा सूत्र बता दिये जाते हैं। छात्र स्वयं नियमों तथा सूत्रों की खोज नहीं करते। इन नियमों तथा सूत्रों का प्रयोग करके छात्रों को कुछ प्रश्न हल करने के लिए दिये जाते हैं। इस विधि में हम सामान्य से विशिष्ट की ओर, सूक्ष्म से स्थूल की ओर, नियम से उदाहरणों की ओर अग्रसर होते हैं। निगमन विधि का प्रयोग मुख्यतः बीजगणित, रेखागणित, तथा त्रिकोणमिति में किया जाता है क्योंकि गणित के इन उपविषयों में विभिन्न सूत्रों, नियमों और सूत्रों का प्रयोग होता है।

दैनिक जीवन में निगमन विधि के ज्ञान :-

(1.) बच्चे को पहले ही बता दिया जाता है कि हरे रंग के सेब खट्टे होते हैं। जब वह 2-4 हरे रंग के सेब चखकर देखता है तो उसे स्पष्ट हो जाता है कि यह नियम ठीक है।

(2.) उन्हें पहाड़े याद करा दिये जाते हैं तथा फिर उनसे उन पहाड़ों की सहायता से प्रश्न हल करने को कहा जाता है। जैसे - अगर एक ढेरी में चार गोलियां हो तो, 5, 7 तथा 9 ढेरियों में कितनी गोलियां होगी? इसका याद किए हुए पहाड़ों के द्वारा उत्तर दे सकता है।

(3.) छात्रों को पहले ही बता दिया जाता है कि त्रिभुज के तीनों कोणों का योग 180° के बराबर होता है। छात्र तरह - तरह के त्रिभुज मापकर इसकी सत्यता की जाँच कर सकते हैं।

निगमन विधि के गुण :-

(1.) पूर्व निर्धारित सूत्र के उपयोग से प्रश्न हल करने में अधिक समय नहीं लगता।

(2.) निगमन विधि द्वारा बालकों की स्मरण शक्ति विकसित होती है, क्योंकि इस विधि का प्रयोग करते समय बालकों को अनेक सूत्र याद करने पड़ते हैं।

(3) इस विधि के प्रयोग द्वारा कम समय में अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(4.) इस विधि के प्रयोग से बालक अभ्यास कार्य शीघ्रता तथा आसानी से कर सकते हैं।

(5.) इस विधि द्वारा मंदबुद्धि छात्रों को गणित का साधारण ज्ञान दिया जा सकता है।

Q (9.) ई० - लर्निंग से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषतायें बतायें।

Ans :- ई० बैंकिंग, ई० - लर्निंग, ई० टिकटिंग आदि जैसे कई शब्द आपने सुना होगा।

जब कोई कार्य कम्प्यूटर और इंटरनेट की सहायता से कहीं भी बैठ कर पूरा किया जा सके तो उसे "ई" से प्रदर्शित करते हैं। जैसे यदि आप अपने बैंक एकाउन्ट को घर बैठ कर इंटरनेट के जरिए एक्सेस करते हो तो इसे ई - बैंकिंग कहेंगे।

ई० लर्निंग या आभासीय कक्षा - कक्ष से अभिप्राय ऐसे कक्षा - कक्षों से है जिनमें आधुनिक कम्प्यूटर तथा संप्रेषणात्मक - तकनीकी युक्त संसाधनों जैसे इंटरनेट, ई - मेल, ऑनलाईन चैटिंग, विडियो कानफ्रेंसिंग आदि का प्रयोग करके नियमित कक्षाओं की परम्परागत शैक्षिक, मूल्यांकन तथा प्रशासनिक गतिविधियों का आंशिक या पूर्ण रूप से स्थान लेने का प्रयत्न किया जाता है।

ई० लर्निंग की सहायता से स्कूल के पाठ्यक्रमों

तथा कक्षा-कक्ष गतिविधियों को स्वयं विद्यार्थियों के पास उनके घर तक पहुँचाने का कार्य किया जाता है। इसकी कार्यशैली से संबंधित मुख्य बातों का उल्लेख निम्न प्रकार है :-

(1) ई० लर्निंग व्यवस्था में विषय विशेषज्ञों और अनुभवी अध्यापकों के द्वारा विद्यालय पाठ्यक्रम के किसी प्रकरण पर अनुदेशन सामग्री तैयार करा कर उसे सैटेलाइट आधारित टैली-कान्फ्रेंसिंग द्वारा प्रसारित कराया जा सकता है।

(2) इस प्रकार की व्यवस्था में विशेषज्ञों तथा अनुभवी अध्यापकों द्वारा विकसित अध्ययन सामग्री वेबसाइट पर डालकर विद्यार्थियों तक पहुँचायी जा सकती है।

(3) अध्ययन सामग्री की सी०डी० या डी०वी०डी० बनाकर उन्हें विद्यार्थियों को बाँटा जा सकता है। विद्यार्थियों को अध्ययन सामग्री के साथ पूरक सामग्री अवश्य ही प्रदान की जाती है ताकि विद्यार्थियों का स्व-अधिगम कार्य भी सुचारु रूप से चलता रहे।

(4) इस कार्य हेतु वेबसाइट पर समयानुसार आवश्यक सामग्री तथा संदेश डाले जा सकते हैं।

ई०-लर्निंग के लाभ :-

ई०- लर्निंग प्रणाली निम्न प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो सकती है :-

(1) आसान सामग्री का उपयोग करने वाला पाठ्यक्रम - अनुदेशक पाठ्यक्रम सामग्री या किसी पाठ्यक्रम पर महत्वपूर्ण जानकारी वेबसाइट पर पोस्ट कर सकते हैं, जिसका मतलब है कि छात्र जिस समय या स्थान पर चाहे अध्ययन कर सकता है और अध्ययन सामग्री को शीघ्रता से प्राप्त कर सकता है।

(2) विस्तृत सहभागिता - अधिगम सामग्री का दीर्घ दूरस्थ अधिगम के लिए उपयोग किया जा सकता है और यह व्यापक श्रोताओं की पहुँच में होती है।

(3) सीखने के लिए विषय आसान बन गये हैं - विशिष्ट विषयों को सीखने के लिए बच्चों और किशोरों की सहायता के लिए विभिन्न प्रकार के अनेक शैक्षिक सॉफ्टवेयर डिजाइन किये गये हैं। उदाहरण में, पूर्व स्कूल सॉफ्टवेयर, कम्प्यूटर

सिम्युलेटर्स और ग्राफिक्स सॉफ्टवेयर शामिल है।
④ नवीनतम तकनीकी के प्रयोग से शिक्षण अधिगम कार्य अधिक रुचिकर तथा प्रेरणादायक बन जाता है।

ई० - लर्निंग की कमियाँ :-

① यह व्यवस्था काफी लचीली है और इसके ज्यादा लचीलेपन से विद्यार्थियों का भटकाव होना संभव है।
② इस प्रकार की व्यवस्था में उपयोग की गई सामग्री की गुणवत्ता में काफी संदिग्धता रहती है।
③ इस व्यवस्था के माध्यम से विद्यार्थी को कक्षा शिक्षण जैसे अनुभवों के अवसर मुलभ [redacted] कराए जा सकते है परन्तु इसमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं [redacted] हो सकती जिसमें वास्तविक कक्षा शिक्षण के जीवनअनुभव, अन्तःक्रिया तथा संबंधों की गहनता व प्रमाणिकता पाई जाए।
④ विद्यालय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वगुण विकास होता है परन्तु अवास्तविक कक्षा-कक्ष प्रणाली में ऐसी कोई क्रिया नहीं होती।

Q(10.) संरचनात्मकता क्या है? इसकी क्या विशेषतायें है?

Ans:- संरचनात्मक का अर्थ :-

संरचनात्मक अधिगम सिद्धांतों के मुख्य प्रर्वतक जॉन डीवी, पियाजे को माना जाता है। प्राचीन काल में विद्वानों ने संरचनात्मक विचारों को महत्व नहीं दिया क्योंकि उस समय बालक के खेलने-कूदने को व्यर्थ एवं उद्देश्यरहित माना जाता था। जीन पियाजे इन पारम्परिक विचारों को नहीं मानते थे, उनके विचार थे कि खेलों का बालक के ज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है इसलिए उन्होंने इन खेलों को बालक के विकास में महत्व दिया। जीन पियाजे का निर्माणात्मक (संरचनात्मक) अधिगम सिद्धांत अनेक अधिगम सिद्धांतों और शिक्षा के क्षेत्र में अनेक शिक्षणविधियों पर अपना प्रभाव डालता है। संरचनावाद (निर्माणवाद) ज्ञान का एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है।

संरचनात्मक अधिगम प्रारंभिक ज्ञानवाद के सम्प्रत्यय पर आधारित है जिसके अनुसार कोई भी बालक जो सीखता है वह उसके पूर्व ज्ञान पर आधारित होता है। संरचनात्मक अधिगम

के प्रवर्तक 'बालक कीरोस्लेट' है का खण्डन करते है। उनके अनुसार बालक खाली स्लेट नहीं होते क्योंकि प्रत्येक बालक में कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य होता है। शिक्षण करने से पहले अध्यापक छात्रों के पूर्व ज्ञान को जानता है कि शिक्षा का प्रारंभ करता है, अर्थात बालक को कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य होता है। इसके अनुसार अधिगम (सीखना) किसी विषय वस्तु से संबंधित ज्ञान को ग्रहण करने तक सीमित नहीं होता अपितु अधिगम वह है जिसमें विद्यार्थी ज्ञान का निर्माण करने के लिए सक्रिय होकर संलग्न रहता है।

रचनात्मकतावाद की प्रकृति एवं मान्यतायें :—

(1) रचनात्मकतावाद में स्वयं के प्रयत्नों से ज्ञान प्राप्त करने या ज्ञान की स्व-रचना करने संबंधी प्रक्रिया पर ही सारा ध्यान केन्द्रित रहता है जबकि व्यवहारवाद पर आधारित परम्परागत कक्षा शिक्षण है, ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के बजाय उससे प्राप्त परिणामों को सीधे ही विद्यार्थी के मस्तिस्क में रखने की कोशिश की जाती है।

(2.) रचनात्मकतावाद यह अपेक्षा करता है कि विद्यार्थीगण ज्ञान प्राप्ति की इस प्रक्रिया में एक निस्क्रिय श्रोता तथा मूक दर्शक बनने के स्थान पर अपनी सक्रिय भागीदारी निभायें एक तरह में रचनात्मकतावाद एक ऐसे शिक्षण अधिगम वातावरण की सृष्टि करने के पक्ष में है जहाँ ज्ञान प्राप्ति हो, विद्यार्थियों की ही केन्द्रिय भूमिका हो, अध्यापक केवल उन्हें आवश्यक सुविधायें जुटाने तथा परिस्थितियों के अनुसार परामर्श या सहायता देने वाले की ही भूमिका में हों।

(3.) रचनात्मकता वाद का इस धारणा में अटूट विश्वास है कि सीखने वाला तभी अच्छी तरह सीखता है जब उस पर विश्वास करते हुए उसे इस बात की आजादी दी जाती है कि वह परिस्थिति विशेष में अपेक्षित ज्ञान का स्वयं को अर्जन या सृजन करें।

(4.) एक शिक्षण - अधिगम परिस्थिति में विद्यार्थी वांछित ज्ञान की प्राप्ति, उसकी वृद्धि तथा और घटनाओं के

अपने - अपने अर्थ लगाने हेतु अपने पूर्व ज्ञान तथा अनुभवों को एक आवश्यक प्रमान के रूप में इस्तेमाल करते हैं। यहाँ यह स्वभाविक है कि बालकों में उनके पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों तथा इनके उपयोग को लेकर वैयक्तिक विभिन्नतायें तो होगी ही। फलस्वरूप अगर वे अपने - अपने लगाये तथा नये ज्ञान की सृष्टि करने में यहाँ भिन्नतायें दिखते हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

रचनात्मकतावाद की प्रकृति अर्थ एवं विशेषताओं से संबंधित उपरोक्त उल्लेख के आधार पर हम रचनात्मकतावाद को एक ऐसी शिक्षण - अधिगम उपागम या विचारधारा के रूप में मान्यता दे सकते हैं जिसमें विद्यार्थी के ऊपर जिम्मेदारी डाल कर उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे वैयक्तिक या सामाजिक स्तर पर बिल्कुल स्वतंत्र रूप से अथवा अपने शिक्षक और सहपाठियों से अपेक्षित समयानुकूल सहायता या मार्गदर्शन प्राप्त करते हुये वर्तमान में उपलब्ध शिक्षण - अधिगम, परिस्थितियों से संबंधित वस्तुओं और घटनाओं का अपने-अपने ढंग से अर्थ लगाते हुए नवीन ज्ञान की रचना या सृजन में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

=

Q(11.) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सूचना तकनीकी की प्रकृति तथा महत्व की विवेचना करें।

Ans:- प्रकृति से ही मनुष्य सूचनाओं की खोज में रहता है। हम सूचना को तत्काल प्राप्त करना चाहते हैं। सूचनाओं और ज्ञान के स्रोतों तक पहुँचने के अनेक रास्ते हैं। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में ज्ञान के विस्फोट के परिणामस्वरूप लगभग सभी विषयों तथा क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है।

सूचना तकनीकी का मुख्य संबंध सूचना से होता है। अतः सूचना तकनीकी शब्द का अर्थ जानने से पहले सूचना शब्द को समझना आवश्यक है।

सूचना का अर्थ :-

सूचना एक ऐसा संसाधन है जिसका कोई मूल्य

नहीं है, जब तक कि उसे प्राप्त न किया जाए, उसका प्रक्रिया-करण किया जाए।

"आँकड़ों का संक्षिप्त रूप सूचना है।" अर्थात सूचना वह आँकड़े है जिसका अर्थ निश्चित होता है।

सूचना तकनीकी का अर्थ :—

सूचना तकनीक, तकनीकों के संग्रह, सूचनाओं के लिए विधियाँ, आँकड़ों का प्रतिनिधित्व, सूचना एवं आँकड़ों का संग्रहण, सूचना या आँकड़ों में सुधार और उन्हें संशोधित करना, डिजिटल कम्प्यूटरों पर सूचना एवं आँकड़ों का सम्प्रेषण तथा सम्प्रेषण नेटवर्क को दिया गया एक नाम है। कम्प्यूटर एक ऐसा उपकरण है जो उपरोक्त कार्यों को प्रभावशाली और कुशलतापूर्वक करता है।

सूचना तकनीकी ने हमारे दैनिक जीवन को कम्प्यूटर के माध्यम से बहुत अधिक प्रभावित किया है जैसे- रेल या हवाई जहाज का टिकट बुक करवाना, इंटरनेट के द्वारा बैंक का लेन-देन करना, मनोरंजन तथा शिक्षा व सम्प्रेषण आदि। आज इसका महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

सूचना की प्रकृति तथा विशेषतायें :—

इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्न लिखित है।

(1) उपलब्धता :— कई बार, किसी व्यक्ति द्वारा प्रोसेस कीगई सूचना नई होती है जो कि पहले उपलब्ध नहीं होती। इस तरह के केस में ऐसी सूचना निर्णय निर्माण और नियोजन में प्रयोगकर्ताओं के लिए बहुत सहायक सिद्ध होती है।

(2.) समयबद्धता :— जब किसी भी सूचना की आवश्यकता होती है, तब इसे जितना हो सके उतनी शीघ्रता से या समय पर उपलब्ध होनी चाहिए।

(3.) शुद्धता :— सूचना में शुद्धता का होना आवश्यक है। अशुद्ध सूचना हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

(4.) सम्पूर्णता :— केवल सम्पूर्ण सूचना ही लाभकारी होती है। एकत्रित सूचना सभी प्रकार से पूर्ण होनी चाहिए।

(5.) प्रस्तुतीकरण :— सूचना को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यह प्रस्तुतिकरण सूचना के महत्व में वृद्धि करता है। उचित तरीके से प्रस्तुत की गई सूचना अधिक प्रभावशाली होती है।

सूचना तकनीकी का शिक्षण अधिगम में महत्व / उपयोग / लाभ :-

(1) अध्यापकों के लिए महत्व अथवा उपयोग :-

सूचना तकनीकी के सेवाओं से अध्यापकों को शिक्षण-अधिगम के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इसकी सहायता से वे पुस्तकों, अन्य पाठ्य सामग्री, श्रव्य-दृश्य सामग्री प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। अध्यापक छात्रों को स्व-अधिगम के लिए सूचना के स्रोत का उपयोग करने में समर्थ बना सकते हैं।

(2.) छात्रों के लिए उपयोगी :-

सूचना तकनीकी से छात्रों को अपने आत्म सुधार के लिए सूचना प्राप्त करने और उसका उपयोग करने के अवसर प्राप्त होते हैं। इसके माध्यम से उनकी जिज्ञासा और निर्माण की स्वभाविक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। अविष्कार करने की उनकी लालसा को भी संतुष्टि प्राप्त होती है। सूचना तकनीकी के माध्यम से वे सूचना के उपयोगी स्त्रोतों, आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के ढंगों, सूचना प्रक्रियाकरण की विधियों से परिचित होते हैं।

(3.) शैक्षिक अनुसंधानों के लिए उपयोगी :-

सूचना तकनीकी की प्रक्रियाओं और परिणामों से उन छात्रों को सहायता प्राप्त होती है जो शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान परियोजनाओं पर काम करना चाहते हैं। सूचना तकनीकी शैक्षिक प्रक्रियाओं या परिणामों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित समस्त कार्यकर्ता वर्ग की सहायता करने के लिए बहुत उपयोगी है।

सूचना तकनीक बुद्धिजीवियों द्वारा इस तथ्य को दिया गया एक नाम भी है जो इस बात का प्रचार करता है कि सूचना अब एक उत्पाद (Product) है तथा इसे बाजार में बेचा जा सकता है। इसके लिए एक ऐसी तकनीक उपलब्ध है जो सूचना की मार्केटिंग और उसके रखरखाव से संबंधित है।

Q.12.) मूल्यांकन के विभिन्न उपकरणों की चर्चा करें।

Ans:- (क) मौखिक परीक्षायें (Oral Test):- मूल्यांकन के लिए मौखिक परीक्षायें विद्यार्थियों के लिए विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसमें बातचीत द्वारा प्रश्न तथा उत्तर लिखने की अपेक्षा बोले जाते है। लिखित परीक्षाओं से कौशलों का मापन संभव नहीं है। मौखिक परीक्षाओं से विद्यार्थियों में ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ उनकी अभिव्यक्ति क्षमता का भी विकास होता है। इससे विद्यार्थियों में ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ उनकी अभिव्यक्ति क्षमता का भी विकास होता है। इससे विद्यार्थियों को अपनी प्रवाहशीलता, उच्चारण, अपनी शक्तियों तथा ज्ञान संबंधी निर्णय लेने में सुगमता रहती है। इससे विद्यार्थियों को प्रेरणा मिलती है। मौखिक परीक्षाओं की विभिन्न तकनीकें इस प्रकार है :—

(1) जोर से पढ़ना (2) तैयार प्रश्नों को पूछना (3) सामान्य बातचीत (4) तैयार प्रकरणों पर बातचीत (5) चित्रों पर प्रश्न (6) सामान्य प्रश्न।

बातचीत के माध्यम से परीक्षार्थियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते है जिनसे उनका परिचय प्राप्त हो तथा उनका भय आदि दूर हो। इससे परीक्षक तथा परीक्षार्थियों के बीच सहज संबंध स्थापित किए जाते है। इसके अंतर्गत ऐसे छोटे प्रश्न किए जाते है जिनका उत्तर परीक्षार्थी तुरन्त तथा थोड़े समय में ही दे सके। इससे परीक्षार्थियों की रुचि के अनुकूल प्रश्न पूछे जा सकते है। चित्रों पर प्रश्न विद्यार्थियों की कल्पना की अभिव्यक्ति की परीक्षा करते है।

(ख) लिखित परीक्षण (Written Test):- लिखित परीक्षण में विद्यार्थियों से प्रश्नों के उत्तर लिखित रूप में प्राप्त किये जाते है। लिखित उत्तरों का अंकन का दोषों का मूल्यांकन करते है। लिखित परीक्षण में प्रश्न प्राय: विभिन्न-विभिन्न प्रकार के होते है जिन्हें मुख्यत: तीन भागों में बाँटा गया है।

(1) निबंधात्मक प्रश्न (2) लघुत्तरात्मक प्रश्न (3) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निबंधात्मक परीक्षायें:- इस प्रकार की परीक्षायें लिखित परीक्षाओं के पुराने और परंपरागत रूप को प्रदर्शित करती है। भारतीय स्कूलों में आजकल निबंधात्मक परीक्षा का प्रचलन है। इन परीक्षाओं में प्रश्नों की रचना इस प्रकार की जाती है कि छात्र उनके उत्तर विस्तृत रूप से लिख सके। इसमें विद्यार्थी को उत्तर देने की स्वतंत्रता होती है, इसलिए इस परीक्षा को बहुत अधिक पसंद किया जाता है। ये

परीक्षायें विद्यार्थियों को घटनाओं, व्यक्तियों, स्थानों का वर्णन करने, समीक्षा करने, सिद्धांतों का प्रयोग तथा रचनात्मक एवं आलोचनात्मक चिन्तन की योग्यताओं का परीक्षण करती है।

लघु उत्तरीय परीक्षा - लघु उत्तरीय परीक्षायें निबंधात्मक तथा वस्तुनिष्ठ दोनों प्रकार की परीक्षाओं के बीच का मार्ग है। इनके उत्तर निबंधात्मक प्रश्नों की तरह विस्तृत तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तरों की तरह बहुत सीमित नहीं होते हैं। लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर में 80 से 100 शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

(ग) अवलोकन प्रविधि :- अवलोकन प्रत्येक वैज्ञानिक शोध अथवा सामाजिक शोध की एक महत्वपूर्ण प्रविधि है। पिछले कुछ वर्षों में सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में अवलोकन विधियों का प्रयोग बढ़ा है, क्योंकि यह किसी भी शोध का आधार ही नहीं है बल्कि हमारे दैनिक जीवन में चारों ओर की घटनाओं को देखने और समझने में भी अवलोकन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सामाजिक संबंधों के अध्ययन में बहुत मात्रा में ज्ञान अनियंत्रित प्रकार के सहभागिता अथवा असहभागिता अवलोकन द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसके पश्चात भी यह कहा जा सकता है कि सभी अवलोकन वैज्ञानिक अवलोकन नहीं होते हैं। अवलोकन के वैज्ञानिक होने के लिए उसे पूर्णतया नियोजित, सैद्धांतिक, मान्यताओं का अनुपालन करने वाला होना चाहिए। इस संबंध में जान डोलार्ड ने बहुत ही उपयुक्त लिखा है कि "शोध की सबसे प्राथमिक प्रविधि मानवीय अनुभवों पर आधारित वह अवलोकन है जिसके द्वारा महत्वपूर्ण घटनाओं को ज्ञात किया जा सकता है।" वस्तुतः सामाजिक अध्ययनों के लिए अवलोकन की उपयोगिता प्राकृतिक अध्ययनों से अधिक है क्योंकि किसी भी सामाजिक घटना का अध्ययन, अवलोकन के बिना नहीं किया जा सकता। सभी सामाजिक अध्ययन अपने निष्कर्षों तथा परिणामों के परीक्षण तथा पुनरीक्षण हेतु अंततः अवलोकन पर निर्भर रहते हैं। वर्तमान में विभिन्न प्रकार के व्यवहार प्रतिमानों के अध्ययन के लिए अवलोकन का प्रयोग किया जाता है। व्यक्तिगत तथा सामाजिक अध्ययन, सामाजिक अंतर्संबंधों, शिशुओं तथा बालकों की विशेषताओं, खेल कूद की क्रियाओं, आक्रमक प्रवृत्ति तथा व्यवहार के अनेक अध्ययनों में इस विधि का प्रयोग अधिकाधिक किया जाने लगा है। कुछ घटनायें एवं समस्यायें ऐसी होती हैं, जिनका अध्ययन केवल अवलोकन से ही किया जा सकता है।

Q(13.) उपलब्धि या निष्पत्ति परीक्षण से क्या अभिप्राय है?

Ans :- उपलब्धि या निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Tests) :- छात्रों के निष्पादन (Performance) को जाँचने की कई मनोवैज्ञानिक विधियाँ हैं, जिनमें एक प्रमुख विधि उनके निष्पादन को किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण के द्वारा मापना या जाँचना है। उपलब्धि परीक्षण एक ऐसा ही मनोवैज्ञानिक परीक्षण है प्राय: ऐसे उपलब्धि मानकीकृत होते हैं, अत: इस तरह के उपलब्धि परीक्षण को मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण भी कहा जाता है।

उपलब्धि परीक्षण का अर्थ :- उपलब्धि परीक्षण वह है जिसके द्वारा किसी निश्चित कार्यक्षेत्र में छात्रों द्वारा अर्जित किए गए ज्ञान एवं कौशल को मापा जाता है, अर्थात छात्र जो ज्ञान विभिन्न कक्षाओं के हेतु प्राप्त करते हैं तो उस विषय वस्तु का अध्ययन करने वाले अध्यापक एवं छात्रों के हेतु यह आवश्यक होता है कि वे यह जानकारी प्राप्त करना चाहता है कि उसने विषय संबंधी ज्ञान किस मात्रा में प्राप्त किया है।

उपलब्धि परीक्षण के मुख्य उद्देश्य :-

(1) निपुणता :- उपलब्धि परीक्षण द्वारा छात्रों द्वारा अर्जित निपुणता को आसानी से माना जा सकता है।
(2) वैधता :- इस परीक्षण के आधार पर परोक्ष रूप से शिक्षकों द्वारा किए गए अध्ययन की वैधता का भी पता चलता है।
(3) तुलना :- इस परीक्षण द्वारा शिक्षक आसानी से कक्षा के भीतर एक छात्र की उपलब्धि की दूसरे छात्र की उपलब्धि से तुलना कर किसी खास निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।
(4) निर्णय लेने में सफल :- इस परीक्षण द्वारा छात्रों की कक्षोन्नति के बारे में शिक्षक एक प्रभावकारी निर्णय लेने में सफल हो पाते हैं।
(5) संशोधन :- इस परीक्षण के द्वारा शिक्षक अपनी शिक्षा नीति में उचित एवं रचनात्मक संशोधन भी करने में सफल होते हैं।
(6) परिवर्तन :- इस परीक्षण के परिणामों के आलोक में शिक्षक यथासंभव पढ़ाये जाने वाले विषयों या पाठ्यक्रमों

में भी आसानी से परिवर्तन कर पाते हैं।

(7) बौद्धिक विकास – इस परीक्षण के आधार पर शिक्षक परोक्ष रूप से छात्रों के बौद्धिक विकास के बारे में एक स्थूल अनुमान लगा सकने में सफल हो जाते हैं।

(8) शैक्षिक मार्ग-दर्शन – इस परीक्षण के परिणामों के आधार पर शैक्षिक निर्देशन, व्यक्तिगत निर्देशन, तथा व्यवसायिक निर्देशन प्राप्त करने में भी काफी मदद मिलती है।

(9) गृह कार्य की मात्रा का निर्धारण :– उपलब्धि परीक्षण द्वारा शिक्षकों को छात्रों से गृहकार्य तथा वर्गकार्य की मात्रा का निर्धारण करने में आसानी हो जाती है।

(10) विद्यालयों को आर्थिक सुविधा :– इस प्रकार के परीक्षण के जो परिणाम होते हैं। वे प्रशासन को भी सुविधा प्रदान करते हैं। इन परिणामों के आधार पर विद्यालयों की मान्यता एवं आर्थिक सहायता देने में प्रशासन को सुविधा होती है।

उपलब्धि परीक्षण के प्रकार :–

शिक्षा की दृष्टि से उपलब्धि परीक्षण को तीन भागों में बाँटा गया है।

(क) वैज्ञानिक उपलब्धि परीक्षण :– वैज्ञानिक उपलब्धि परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिनके परीणामों या प्राप्तांकों के आधार पर शिक्षा मनोवैज्ञानिक छात्रों के उन विषय - क्षेत्रों का पता लगाते हैं जिनमें उन्हें अधिक कठिनाई होती है ऐसे परीक्षण का निर्माण विशेषज्ञों की मदद से लिया जाता है जो छात्रों की विषय संबंधी कठिनाईयों से ज्ञात होते हैं इस तरह के परीक्षण का मुख्य उद्देश्य वैयक्तिक छात्र की कमजोरियों एवं सामर्थ्य को उजागर करना होता है।

(ख) विशिष्ट विषय - वस्तु संबंधी उपलब्धि परीक्षण – इस तरह का परीक्षण प्रत्येक विषय जिसे छात्रों को पढ़ाया जाता है, के लिए अलग - अलग विकसित किया जाता है। ऐसे परीक्षणों का प्रयोग शैक्षिक वर्ष के अंत में किया जाता है तथा पूरे साल में अर्जित ज्ञान एवं निपुणता का मापन किया जाता है।

(ग) उपलब्धि परीक्षणमाला :– उपलब्धि परीक्षणमाला में कई परीक्षण होते हैं जिनके द्वारा अलग - अलग विषयों में छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान का मापन किया जाता है।

Q(14.) ग्रेडिंग प्रणाली क्या है? इसकी विस्तार से चर्चा करें।

Ans:- विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों से संबंधित परिणामों को व्यक्त करने के लिए तथा उन्हें उत्तीर्ण व अनुत्तीर्ण या पूर्णांक में से कितने प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं। ऐसा बताने के लिए छात्रों को अंक के स्थान पर A, B, C, D E या O, A, B, C, D इत्यादि ग्रेड प्रदान किये जाते हैं। इस प्रणाली के गुण इस प्रकार हैं।

ग्रेडिंग प्रणाली के गुण :-

इस प्रणाली को अंक प्रणाली से उपयुक्त समझा जाता है क्योंकि

(i) उत्तर या उपलब्धि विशेष के लिए सही-सही कितने अंक दिये जायं इसकी अपेक्षा पक्षपात तथा आत्मगतता पर आवश्यक अंकुश लगाते हुए ग्रेड प्रदान करना अधिक आसान व युक्तिसंगत जान पड़ता है।

(ii) यदि एक ही परीक्षक तथा परीक्षा से संबंधित परीक्षा केन्द्रों की उत्तर पुस्तिकायें अलग-अलग परीक्षक के पास जायें या अलग-अलग परीक्षक विभिन्न छात्रों की समूह परीक्षा लें तो उनके मूल्यांकन में आत्मनिष्ठता तथा आंकन स्तर की विभिन्नता आती है। ग्रेडिंग परीक्षकों की आत्मनिष्ठा पर रोक लगाने का प्रयास करती है।

(iii) मूल्यांकन चाहे अलग-अलग परीक्षकों द्वारा किया जाय या विभिन्न विषयों, कार्यक्षेत्रों तथा विभिन्न तकनीकों से किया जाय, सभी अवस्थाओं में एक जैसा आधार प्रदान करके उचित तुलनात्मक अध्ययन करने तथा सभी अवस्थाओं के मूल्यांकन परिणामों का उचित संकलन करने के लिए ग्रेडिंग प्रणाली विश्वसनीय आधार प्रदान करती है।

(iv) अंक प्रणाली में 1, 2 अंक इधर-उधर होने से कई छात्र अनुत्तीर्ण या फिर द्वितीय, तृतीय श्रेणी में चले जाते हैं तथा एक अंक अधिक लाने पर वह होशियार या प्रतिभाशाली छात्रों की श्रेणी में आ जाता है। ग्रेडिंग में वर्गीकरण का आधार बढ़ जाता है जैसे 55 से 65 % तक अंक पाने वाले को एक समान ग्रेड प्रदान करके प्रचलित दोष को कुछ कम किया जा सकता है।

ग्रेडिंग विधियाँ :- ग्रेडिंग प्रणाली में प्रायः दो प्रकार के आधार ग्रेड प्रचलन में हैं यथा A, B, C, D, E तथा O, A, B, C, D इनके द्वारा क्रमशः उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, अच्छा, कम या बहुत कम उपलब्धि स्तर का प्रतिनिधित्व किया जाता है। इन आधार ग्रेडों को प्रदान करने के लिए दो विधियों का अनुकरण किया जाता है।

(i) निरपेक्ष ग्रेडिंग विधि (ii) सापेक्ष ग्रेडिंग विधि।

निरपेक्ष ग्रेडिंग विधि :— इस विधि में यह तय कर लिया जाता है कि किस अक्षर ग्रेड को प्रदान करने के लिए कितने प्रतिशत अंक चाहिए। जैसे

ग्रेड	अंक प्रतिशत	निष्पत्ति स्तर
O	80% और उससे अधिक	बहुत ही अच्छा या उत्कृष्ट
A	70% से 79% तक	सामान्य से ऊपर या उत्तम
B	60% से 69% तक	सामान्य या अच्छा
C	50% से 59% तक	सामान्य से कम
D	50% से कम	बहुत ही कमजोर

निरपेक्ष ग्रेडिंग का दूसरा रूप मानदंड संदर्भित ग्रेडिंग कहलाता है। इसमें परीक्षण का कठिनाई स्तर कैसा है तथा विद्यार्थियों से किस प्रकार की अधिगम निष्पत्ति की अपेक्षा की जा सकती है। इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए परीक्षक द्वारा निष्पत्ति स्तर का एक मानदंड निर्धारित कर लिया जाता है और उसी के आधार पर ग्रेड देने का काम किया जाता है।

(ii) सापेक्ष ग्रेडिंग विधि :— इस विधि में विद्यार्थियों को अपनी कक्षा या समूह विशेष में अपनी उपलब्धि या निष्पत्ति के आधार पर जो सापेक्षिक स्थिति या मेरिट होती है उसी के आधार पर उन्हें ग्रेडिंग दी जाती है। व्यवहारिक रूप में इस प्रकार के ग्रेड वितरण में सामान्य वक्र वितरण के सिद्धांत का अनुसरण किया जाता है। इसके पीछे यही मान्यता कार्य करती है कि विद्यार्थियों को किसी भी एक निश्चित जनसंख्या में अंकों का विवरण सामान्य वक्र वितरण के अनुरूप ही होता है इस दृष्टि से सामान्य वक्र क्षेत्र को सांख्यिकी विधि का प्रयोग करते हुए जितने ग्रेड दिये जाने होते हैं उतने ही खंडों में बाँटकर यह निश्चित कर लिया जाता है कि खण्ड विशेष में दी गई जनसंख्या में कितने प्रतिशत विद्यार्थी शामिल होंगे। इस प्रकार की जानकारी आगे जाकर हमें ग्रेडिंग करने हेतु निम्न प्रकार का निर्णय लेने में सहायक बनाती है।

ग्रेड	विद्यार्थियों का प्रतिशत जिन्हें यह ग्रेड दिया जाता है
O	कक्षा या समूह के शीर्षस्थ 7%
A	कक्षा या समूह के शीर्षस्थ से नीचे 24%
B	कक्षा या समूह के मध्य 38%
C	कक्षा या समूह के मध्य से नीचे 24%
D	कक्षा या समूह के सबसे नीचे वाले 7%

Q(15) व्यापक एवं निरंतर मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं?

Ans:- आज मूल्यांकन को सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का एक अंतरिम भाग बनाने की आवश्यकता है। परम्परागत परीक्षण विधि केवल ज्ञानात्मक पक्ष का ही मूल्यांकन करती है और अध्यापक तथा विद्यार्थियों की कोशिशें भी मुख्य रूप से इसी भाग पर केन्द्रित रहती हैं। इसीलिए वर्तमान स्कूल कार्यक्रम विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विस्तृत क्षेत्रों के विकास की अवहेलना करते हैं। यदि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया व्यापक एवं निरंतर होती है तो मूल्यांकन प्रक्रिया भी व्यापक एवं निरंतर होनी चाहिए।

① व्यापक मूल्यांकन :- (Comprehensive Evaluation):- विद्यार्थियों की विद्वता एवं गैर विद्वता पहलों से संबंधित उद्देश्यों की प्राप्ति को जानने के लिए प्रयोग की गई प्रक्रिया को व्यापक या विस्तृत मूल्यांकन प्रक्रिया कहा जाता है। साधारणतया यह देखा जाता है कि विद्वता संबंधी तत्व जैसे विषय के तथ्य, सम्प्रत्ययों, सिद्धांतों आदि के ज्ञान एवं बुझ-बुझ तथा चिंतन कौशलों का ही मूल्यांकन किया जाता है और गैर विद्वता संबंधी तत्वों को या तो मूल्यांकन प्रक्रिया से बाहर कर दिया जाता है या उन पर ध्यान नहीं दिया जाता है। अतः बालक के व्यक्तित्व के समग्र विकास का उद्देश्य अपूर्ण रह जाता है। मूल्यांकन को व्यापक बनाने के लिए इसमें विद्वता तथा गैर विद्वता संबंधी सभी तत्वों को शामिल किया जाना चाहिये। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में तथा इसके संशोधित रूप 1992 में भी यह इंगित किया गया है कि मूल्यांकन प्रक्रिया में विद्वता तथा गैर विद्वता क्षेत्र के सभी अधिगम अनुभवों को शामिल किया जाना चाहिए।

② सतत या निरंतर मूल्यांकन :-
शिक्षा के रूप में हमारी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि आनुदेशनात्मक उद्देश्यों को किसी सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है। उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रवृत्ति को समय-समय पर जाँचा जाना चाहिए, मूल्यांकित किया जाना चाहिए, नहीं तो हमें यह ज्ञात नहीं होगा कि हम कहाँ जा रहे हैं?

परम्परागत परीक्षण केवल एक निश्चित समय पर ही ज्ञान एवं कौशलों की उपलब्धि की जाँच करता है। परन्तु मूल्यांकन का नवीन पहलू मांग करता है कि विद्यार्थियों की उपलब्धियों एवं व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन निश्चित समय पर नहीं अपितु निरंतर होना चाहिए। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रत्येक क्रिया जैसे - अधिगम अनुभवों का चयन व नियोजन, शिक्षण विधियों व तकनीकों में परिवर्तन, अध्यापक का व्यवहार, शिक्षण अधिगम के लिए प्रदान किया गया वातावरण, शिक्षण साधन व उपकरणों का प्रयोग आदि सभी सतत मूल्यांकन से प्रभावित होती है।

राष्ट्रीय पाठ्य चर्चा की रूपरेखा के संशोधित प्रारूप 2005 में भी ये लिखा गया है कि निरंतर और विस्तृत मूल्यांकन ही एक मात्र सार्थक मूल्यांकन पद्धति है। ध्यान इस बात पर दिया जाना चाहिए कि किस प्रकार इसका प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जाए।

व्यापक एवं निरंतर मूल्यांकन के लाभ व सीमायें :—

1. यह पुस्तकालय में अध्ययन की आदतों का विकास करता है।
2. इसमें बालक में आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।
3. यह आपसी विचार - विमर्श के अवसर प्रदान करता है।
4. यह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाता है।
5. यह बालक के व्यक्तिगत योग्यताओं को प्रोत्साहन देता है।
6. इसके आधार पर विद्यार्थी की भविष्य में सफलता की भविष्यवाणी की जा सकती है।
7. यह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की कमियों या कमजोरियों को दूर करने में सहायक होता है।

व्यापक तथा सतत मूल्यांकन की हानियाँ एवं सीमाएं :—

1. यह मूल्यांकन तभी संभव है, जब अध्यापक एवं विद्यार्थी के बीच मधुर संबंध हों।
2. अध्यापक का पक्षपात इसे वस्तुनिष्ठ की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठ बना देता है।
3. यह बड़ी कक्षा वाली कक्षा - कक्ष में संभव नहीं होता।
4. इसमें समय तथा शक्ति का प्रयोग अधिक होता है।
5. अध्यापक को ऐसे मूल्यांकन के लिए प्रत्येक विद्यार्थी की भूमिका को जानना आवश्यक होता है।

ऊपर वर्णित हानियों तथा सीमाओं के बावजूद भी यह मूल्यांकन बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी उपयोगिता को बढ़ाना अध्यापक पर निर्भर करता है।